नामवर सिंह : आलोचक का आत्मावलोकन

- गोपेश्वर सिंह

विभागाध्यक्ष,हिन्दी

दिल्ली विश्वविद्यालय

फोन – 011- 27666628

ई- मेल – gopeshwar1955@gmail.com

शेर का यह टुकड़ा नामवर सिंह अक्सर दोहराते थे:'जो सुलझ जाती है गुत्थी,उसको उलझाता हूँ मैं'.यह नामवर सिंह के आलोचक व्यक्तित्व की बुनियाद में है. आलोचना को अक्सर साहित्यिक गुत्थियों को सुलझाने वाली विधा माना जाता है. नामवर सिंह की आलोचना की खूबी सुलझ चुकी गुत्थियों को भी नई गुत्थियों की ओर ले जाना रहा है. वे आलोचना का धर्म गुत्थी सुलझाना नहीं, गुत्थी उलझाना मानते रहे हैं. यहाँ 'गुत्थी' से अर्थ संभवतः अंग्रेजी के 'एम्बिग्युटी', 'कॉम्प्लेक्सिटी', 'आयरनी' आदि से या इन सबके मिले-जुले रूप से है .हिंदी में इसे 'गांठ लगाना' या 'गिरह लगाना' कहेंगे. आलोचना का काम रचना की एक गांठ को खोलना और भविष्य के पाठक –आलोचक के लिए नयी गांठ लगाना है. सरलीकरण के सख्त विरोधी नामवर सिंह जिस गुत्थी को उलझाने की बात करते हैं, उसका अर्थ शायद यही है. इस कारण उनकी आलोचना निरंतर बहस और विवाद को जन्म देती रही है.

अज्ञेय के बाद हिंदी संसार की हलचलों के केंद्र में नामवर सिंह ने अपनी जगह बनाई. यह पहली बार हुआ कि हिंदी का कोई आलोचक साहित्य का केन्द्रीय व्यक्तित्व बन जाए. अज्ञेय के जीते जी उनके सामने केन्द्रीयता हासिल करना आसान नहीं था. अज्ञेय बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार थे. कविता, उपन्यास, सम्पादन आदि क्षेत्रों में उन्होंने अपने युग का नेतृत्त्व किया था. उनका व्यक्तित्व आकर्षक था. उनका वस्त्र-विन्यास भी उनके पाठकों-प्रशंसकों के आकर्षण का विषय था. वे नागरिक रूचि के व्यक्ति थे. एक किस्म का आभिजात्य उनके व्यक्तित्व का अनिवार्य हिस्सा था.इन कारणों से हिंदी का मध्यवर्ग उनकी ओर आकृष्ट था. उनके जीवन काल में ही ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए नामवर सिंह हिंदी की बौद्धिक दुनिया के आकर्षण बन गये .धोती-कुर्ता के अपने ख़ास पहरावे और बनारसी पान की अदा के साथ कवि त्रिलोचन द्वारा 'पुस्तक पकी आँखें' के विशेषण से नवाजे गए आलोचक नामवर सिंह का हिंदी की बौद्धिक दुनिया का केन्द्रीय व्यक्तित्व बन जाना कम आश्चर्यजनक नहीं है. यह पहली बार हुआ कि कोई आलोचक किसी नगर-कस्बे में बोलने जाए तो उसे सुनने के लिए छात्रों-अध्यापकों के अतिरिक्त प्रबुद्ध नागरिकों की भी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो.यह भी पहली बार हुआ कि नामवर सिंह को सुनने वालों में मार्क्सवादियों के साथ गैर-मार्क्सवादी नागरिकों की एक बड़ी जमात होती थी.

नामवर सिंह ने अपने लिखे से हिंदी भाषी जनता को जितना शिक्षित किया उससे अधिक अपने व्याख्यानों के जरिए उन्होंने यह काम किया. 'कविता के नए प्रतिमान' (1968) के बाद 'दूसरी परंपरा की खोज' (1982) के प्रकाशन के बीच एक लंबा अंतराल है. इस बीच उनकी कोई किताब नहीं आई. लेकिन वे घूम-घूमकर आसेतु हिमालय व्याख्यान देते रहे. किताब नहीं आ रही थी और व्याख्यानों की संख्या बढ़ती जा रही थी जिसे देखते हुए विरोधियों ने व्यंग्य में उन्हें 'वाचिक परंपरा का आलोचक' कहना शुरू किया. ऐसा कहने वालों की मंशा यह होती थी कि नामवर सिंह लिखते नहीं,सिर्फ बोलते हैं. लेकिन आगे चलकर प्रशंसक ही नहीं,विरोधी भी यह महसूस करने लगे कि व्याख्यान भी जनता के बौद्धिक शिक्षण का एक माध्यम है. कवि नागार्जुन ने नामवर सिंह की भाषण-कला की प्रशंसा करते हुए और नामवर -विरोधियों को जवाब देते हुए जो कहा है वह देखने लायक है. नागार्जुन कहते हैं : "अपने देश में आम जनता तक बातों को ले जाने की दृष्टि से, पुस्तकों से दूर कर दिए गए लोगों तक विचारों को पहुँचाने के लिए लिखना जितना जरुरी है, उससे ज्यादा जरुरी है बोलना. स्थापित (और स्थावर भी) विश्वविद्यालयों की तुलना में यह जंगम विद्यापीठ ज्यादा जरुरी है. नामवर इस जंगम विद्यापीठ के कुलपति हैं. इस विद्यापीठ का कोई मुख्यालय नहीं होता.यह जगह-जगह जाकर ज्ञान का वितरण सत्र आयोजित करता है." इधर के वर्षों में उनके व्याख्यानों के लिखित रूप जो पुस्तकाकार आए हैं उनसे पता चलता

है कि उन्होंने अपने व्याख्यानों को विश्वविद्यालय और उसके बाहर की दुनिया के बीच जन-संवाद का कितना बढ़िया माध्यम बनाया. अब तक हिंदी में यह काम कोई दूसरा आलोचक नहीं कर पाया था. इस रूप में नामवर सिंह के आलोचक व्यक्तित्व का विस्तार हुआ. वे 'पब्लिक इंटेलेक्चुअल' कहे जाने लगे.

'छायावाद' (1955) तथा 'इतिहास और आलोचना' (1957) से नामवर सिंह के आलोचक व्यक्तित्व की पहचान बनी. 'कहानी: नई कहानी' (1964) और 'कविता के नए प्रतिमान' (1968) के जरिए वे आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हुए. 'दूसरी परंपरा की खोज' (1982) से वे हिंदी आलोचना की बहस के केंद्र में वर्षों तक बने रहे. 'वाद-विवाद-संवाद' (1989) के जरिए उन्होंने अपने विवादप्रिय आलोचक व्यक्तित्व को बनाए रखा. 'आलोचना' पत्रिका का कई दशकों तक उन्होंने संपादन किया और नई आलोचनात्मक समझ का विकास किया. इन सब कामों के जरिये हिंदी आलोचना को भारतीय सन्दर्भों के साथ वैश्विक साहित्यिक समझ से जोड़ने और नई पीढ़ी के आलोचकों के बौद्धिक क्षितिज का विस्तार करने में नामवर सिंह का ऐतिहासिक योगदान है.

छायावाद को लोगों ने अबूझ पहेली बना रखा था. शांतिप्रिय द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी और नगेन्द्र के छायावाद सम्बन्धी लेखन के बावजूद वह हिंदी पाठक के सामान्य बोध का हिस्सा नहीं बना था. रामविलास शर्मा के निराला संबंधी लेखन से कवि निराला का महत्त्व सामने आ रहा था, छायावाद तब भी हिंदी पाठक की समझ से लगभग बाहर था. 'छायावाद' नामक अपनी पुस्तक के जरिए इस नई काव्य प्रवृत्ति को नामवर सिंह ने बड़े परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा. छायावादी कविता में 'राष्ट्रीय जागरण का पर्याप्त आभास' देखने वाले इस युवा आलोचक ने लिखा: "छायावाद के काव्य सौंदर्य के विवेचन से स्पष्ट है कि यह सारा सौंदर्य व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न हुआ है. और वह स्वाधीनता भी व्यक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण समाज की स्वाधीनता की अभिव्यक्ति है....छायावाद की कविताएँ अपने पीछे एक विशाल परिदृश्य का पता देती हैं. छायावाद में जो सार्वभौम और शाश्वत तत्त्व दिखाई पड़ते हैं वे सौंदर्यशास्त्र के किसी अलौकिक नियम से नहीं आए हैं. बल्कि उसके ऐतिहासिक कार्यों के ही पुरस्कार हैं". छायावाद को भक्तिकाव्य के समान महत्त्व देते हुए नामवर सिंह ने कहा कि 'यह गौरव असाधारण' है.

नामवर सिंह की प्रगतिशील आलोचक के रूप में पहचान उनकी पुस्तक 'इतिहास और आलोचना' से बनी. वह शीतयुद्ध का ज़माना था. हिंदी में भी प्रगतिशील और गैर-प्रगतिशील जमात के बीच अंतर्वस्तु और रूप को लेकर तीखी बहस चल रही थी. 'इतिहास और आलोचना' के अपने लेखों के जरिए युवा नामवर सिंह ने प्रगतिशील मोर्चे का नेतृत्त्व किया. इस किताब के कारण प्रगतिशील जमात में उन्हें व्यापक लोकप्रियता और प्रतिष्ठा मिली. लेकिन बाद के वर्षों में नई कविता पर बात करते हुए गैर-प्रगतिशील कवियों- रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, श्रीकांत वर्मा आदि की कविताओं पर भी उन्होंने विचार किया तथा तनाव, विडम्बना आदि को भी कविता के मूल्यांकन में आधार बनाया. उन्होंने कविता की अंतर्वस्तु के साथ जब उसके रूप पक्ष पर भी जोर दिया तो प्रगतिशील जमात में उनके प्रतिमान विवाद के घेरे में आ गए. 'कविता के नए प्रतिमान' की कड़ी आलोचना प्रगतिशील जमात में हुई. नामवर सिंह पर रुपवाद के आरोप लगे. उनकी यह आलोचना-पुस्तक मार्क्सवाद से उनके विचलन के रूप में देखी जाने लगी. लेकिन विचलित हुए बिना वे अपनी राह चलते रहे और गैर-प्रगतिशील कवियों-कहानीकारों को भी पसंद किए जाने के कारण बराबर विवाद के केंद्र में रहे.

नामवर सिंह की पूरी आलोचना यात्रा नए रास्ते की खोज है. हिंदी में जो इकहरी मार्क्सवादी समझ उस जमाने में काम कर रही थी, उसे बदलने में मुक्तिबोध के साथ नामवर सिंह ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. इस क्रम में वे रुढ़िवादी मार्क्सवादियों से टकराने में भी न हिचके और गैर-मार्क्सवादी लेखकों से संवाद करने से भी उन्होंने परहेज नहीं किया. अपने समकालीनों में विजयदेव नारायण साही से उनका आलोचनात्मक संवाद हमेशा बना रहा तो अंग्रेजी के एफ.आर. लीविस भी उनके प्रिय आलोचक थे. नामवर सिंह ने मार्क्सवादी साहित्य चिंतकों से सीखा ही, गैर-मार्क्सवादी साहित्य चिंतन का भी सर्वोत्तम उनके सामने था. मुक्तिबोध की तरह गैर-प्रगतिशील लेखकों की कला संबंधी समझ से सीखने में उन्होंने कभी परहेज नहीं किया. पाब्लो नेरुदा और मुक्तिबोध जैसे मार्क्सवादी माने जाने वाले कवियों की तरह कविता में तनाव को देखने की आलोचनात्मक पहल उन्होंने की तथा कविता की परख के लिए यथार्थवाद को आत्यंतिक रूप से आधार कभी नहीं बनाया.

नामवर सिंह मूलतः कविता के आलोचक माने जाते हैं. मित्रों, खासतौर तौर से भैरव प्रसाद गुप्त के आग्रह पर वे कहानी आलोचना के क्षेत्र में आए. लेकिन जिस संलग्नता के साथ उन्होंने कहानी समीक्षा की एक पद्धति विकसित की, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है. नामवर सिंह के पहले कहानी समीक्षा की कोई पद्धति नहीं थी. कहानी के तत्त्वों के आधार पर समीक्षा लिखी जाती थी. नामवर सिंह ने उस यांत्रिक विश्वविद्यालयी ढांचे से कहानी को निकालकर समीक्षा की नई जमीन पर रखकर देखा. उन पर आरोप लगे कि उन्होंने कविता के आलोचनात्मक टूल्स का इस्तेमाल कहानियों के मूल्यांकन में किया है.उन्होंने काव्यात्मकता, संगीतात्मकता आदि की चर्चा की, लेकिन सबसे अधिक जोर उनका 'कहानीपन' और कहानी में आते संवेदनात्मक बदलावों पर था. कहानी में नवीनता की खोज का उनका आग्रह बराबर बना रहा इस बात की उन्होंने परवाह नहीं की कि कौन प्रगतिशील जमात का कहानीकार है और कौन नहीं. नई कहानी पर विचार के क्रम में जहाँ निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा आदि की नवीनता को उन्होंने जहाँ रेखांकित किया वहीं बहुत से प्रगतिशील कहे जाने वाले कहानीकारों को वह महत्व नहीं दिया जिसकी अपेक्षा प्रगतिशील जमात को थी.नामवर सिंह की आलोचनात्मक पहल के कारण कहानी हिंदी की प्रमुख विधा के रूप में देखी जाने लगी. ठीक ही विजयमोहन सिंह ने उन्हें 'हिंदी कहानी का प्रथम विधिवत आलोचक' कहा है.

नामवर सिंह मानते थे कि आलोचक की असली पहचान यह है कि वह किन रचनाओं को चुनता है और उनसे किन अंशों को रेखांकित करता है. रचना के मर्म का रेखांकन किसी भी आलोचक की आलोचनात्मक समझ का प्रमाण है. यदि वह अच्छी और ख़राब रचना में फर्क नहीं करता है तो वह साहित्य सिद्धांत की चाहे जितनी ऊँची बातें करे, वह अच्छा आलोचक नहीं माना जाएगा. इस अर्थ में आलोचक नामवर सिंह का लोहा उनके प्रतिपक्षियों ने भी माना. रामचंद्र शुक्ल जितने बड़े साहित्य चिन्तक थे उतने बड़े रचना के मर्मी आलोचक भी थे. कविता के मार्मिक अंशों की पहचान में शुक्ल जी का जोड़ नहीं है. शुक्ल जी के बाद जिस आलोचक ने साहित्य सिद्धांत के साथ रचना के मर्म का उद्घाटन किया, वे नामवर सिंह हैं. यही कारण है कि समकालीन से लेकर नई पीढ़ी तक के रचनाकार नामवर सिंह की आलोचनात्मक राय को महत्त्व देते रहे. यह अकारण नहीं है कि तमाम विवादों के बावजूद प्रगतिशील-गैर प्रगतिशील दोनों खेमों में वे आकर्षण के केंद्र बने. यह सम्मान कोई दूसरा मार्क्सवादी आलोचक हासिल नहीं कर सका. नामवर सिंह मानते थे कि मार्क्सवादी आलोचना की सार्थकता तब है जब मार्क्सवादी विशेषण की उसे जरूरत न रह जाए.

नामवर सिंह अपने युग की रचनात्मक मनीषा की अगली नोक की पहचान पर बल देने वाले आलोचक हैं. वे रचना में आती नयी से नयी मानवीय संवेदना को रेखांकित करना आलोचक का धर्म मानते हैं.वे किसी आलोचक के निष्कर्ष को महत्वपूर्ण मानने की जगह उसके पीछे जो चिंतन प्रणाली है उस पर जोर देते हैं. 'समकालीन आलोचना की समस्याएं' शीर्षक अपने एक प्रकाशित व्याख्यान में अपनी आलोचना सम्बन्धी धारणा पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है : "...आलोचक के निष्कर्ष महत्वपूर्ण नहीं हुआ करते, निष्कर्ष के पीछे जो चिंतन-प्रणाली है, वह महत्वपूर्ण हुआ करती है. इसके साथ ही एक और चीज होती है तर्क और युक्ति. तर्क और युक्ति और मूल्य प्रणाली के साथ ही किसी आलोचक की पहचान उसकी संवेदनशीलता से जानी जाती है, आंकी जाती है. किसी कवि पर बहुत बड़ा पोथा कोई आलोचक लिख सकता है,लेकिन पूरा ग्रन्थ पढने के बाद भी कभी-कभी पता नहीं लगता है कि सचमुच इस कवि की दो पंक्तियाँ ऐसी नयी, मौलिक खोजकर उसने निकाली हो जिनपर किसी की नजर न गयी हो.इसलिए अपने तईं मैंने आलोचना पुस्तकों के बारे में एक नुस्खा यह बना रखा है: किसी कविता की आलोचना-पुस्तक है तो उसके उद्धरणों में देखता हूँ कि उसमे वही उद्धरण तो नहीं दिए गए हैं, जो दूसरे आलोचकों ने दिए हैं, या आलोचक ने एक पंक्ति ऐसी भी उद्धृत की है,जो और पुस्तकों में नहीं है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास को जांचना हो तो उसमें कवियों की, उदाहरण के रूप में दी हुई, रचनाओं को देखिए. उससे समझ में आएगा कि यह वह आदमी है, जो समूचे हिंदी साहित्य से चुनकर उद्धरण रखता है. कहा भी गया है कि हिंदी साहित्य में 'गोल्डेन ट्रेजरी' कोई तैयार नहीं की गयी, लेकिन आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जो इतिहास है, स्वयं हिंदी काव्य की 'गोल्डन ट्रेजरी' है. यह अचूक पहचान है, अच्छे आलोचक की. युक्ति हो, सिद्धांत हो, मानदंड हो, ज्ञान हो, विद्वता हो, सारी चीजें हों, लेकिन यह मूल वस्तु ग्रहणशीलता, संवेदनशीलता- यदि आलोचक में नहीं है, तो वह चाहे जितना बड़ा पंडित हो, विद्वान हो, शोधक हो, वह आलोचक नहीं है." यह लम्बा उद्धरण देने का एक ही तात्पर्य है कि साहित्यिक आलोचना से नामवर सिंह का जो आशय है उसे समझा जा सके.

ठसपन और अतिशय सुसंगतता आलोचक नामवर सिंह की फितरत नहीं थी. इसलिए प्रारम्भ में जिस कहानीकार निर्मल वर्मा को वे नई कहानी के केंद्र में रखते रहे और 'परिंदे' को नई कहानी का प्रथम रचनात्मक विस्फोट माना और जिसकी विषयवस्तु एवं कला की भूरी-भूरी तारीफ़ की, उसी निर्मल वर्मा की बाद की रचनात्मक परिणतियों को उन्होंने 'बाबावाद' कहकर तीखी आलोचना की. 'कविता के नए प्रतिमान' में कवि अज्ञेय उनके निशाने पर थे. लेकिन बाद के वर्षों में अज्ञेय की कविता के वे प्रशंसक हो गए. कभी जिस 'असाध्य वीणा' में उन्हें सबकुछ बासी नजर आया था, वही 'असाध्य वीणा' उन्हें अच्छी कविता लगने लगी. अज्ञेय की 'नाच' कविता की उन्होंने अनेक गोष्ठियों में मार्मिक व्याख्या की और तनी हुई रस्सी पर चलते हुए एक नट का जो तनाव होता है उस रूपक से अज्ञेय के कवि व्यक्तित्व को जोड़ा.

जिस मुक्तिबोध को नामवर सिंह नई कविता का केन्द्रीय और शीर्ष व्यक्तित्व साबित कर चुके थे उसी मुक्तिबोध की काव्यभाषा को लेकर बाद के वर्षों में वे प्रशंसक नहीं रह गये थे. 'दूसरी परंपरा की खोज' के जरिए आलोचक-इतिहासकार हजारीप्रसाद द्विवेदी के क्रांतिकारी व्यक्तित्व को गढ़ने वाले नामवर सिंह ने रामचंद्र शुक्ल की रचनावली का संपादन किया और महान आलोचक के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया. उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास पर टिप्पणी करते हुए लिखा: "आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इतिहास उन ग्रंथों में से है जिन्हें मैं नित्य पढ़ता हूँ..... हिंदी साहित्य का कोई विद्यार्थी यदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास को नियमित रूप से नहीं पढ़ता है, तो मैं उसे हिंदी साहित्य का अधिकारी अध्येता नहीं मान पाता". आचार्य शुक्ल की आलोचना की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा: "हिंदी साहित्य का पहला व्यवस्थित इतिहास लिखने वाले, आचार्य शुक्ल अपने युग के सबसे जागरुक आलोचक थे- बल्कि वे मूलतः आलोचक ही थे. उनके 'इतिहास' का स्थायित्व उनके आलोचनात्मक मूल्यांकन के कारण है". उनके महत्त्व पर और अधिक जोर देते हुए उन्होंने लिखा: "यह हिंदी आलोचना का सौभाग्य है कि उसकी प्रतिष्ठा एक ऐसे समालोचक द्वारा हुई, जो शुद्ध साहित्यिक आलोचक नहीं था, सिर्फ अलंकार और रस की मीमांसा करने वाला काव्य विवेचक नहीं था, बल्कि साहित्य को व्यापक सामाजिक सन्दर्भों में देखने वाला और साहित्य की सामाजिक सार्थकता की प्रतिष्ठा करने वाला आलोचक था. आचार्य रामचंद्र शुक्ल दुनिया के महान आलोचकों के समान ही भारत के पहले गंभीर समालोचक दिखाई पड़ते हैं".

'दूसरी परंपरा की खोज' को आधार बनाकर अब जो लोग हिंदी आलोचना में शुक्ल बनाम द्विवेदी का खेल खेलते हैं, वे खेलते रहें, अज्ञेय बनाम मुक्तिबोध का भी जो खेल खेलते हैं, वे भी खेलते रहें.नामवर सिंह हिंदी आलोचना में बनामों के इस खेल में किधर हैं यह कहना कठिन है. दूसरी परंपरा की खोज करना एक बात है, कबीर की प्रशंसा करना एक बात है, नामवर सिंह के लिए महान कवि तो तुलसीदास और महान आलोचक रामचंद्र शुक्ल ही हैं. इसलिए उनके आलोचना-कर्म में सुसंगतता ढूंढने पर उनके प्रशंसकों को निराशा हाथ लगेगी. अपनी आलोचना-यात्रा के दौरान जो आदमी आत्मावलोकन भी करे और आत्मालोचन के लिए प्रस्तुत भी रहे, वह शत-प्रतिशत सुसंगत हो भी नहीं सकता. अपनी बातचीत में इधर के वर्षों में नामवर सिंह यह स्वीकार करने लगे थे कि 'कविता के नए प्रतिमान' तक उनकी जो आलोचना-यात्रा है , उस पर शीत युद्धकालीन छाया का प्रभाव है. 'इतिहास और आलोचना' नामक अपनी पुस्तक की 'विज्ञप्ति' में 1978 में ही उनकी यह स्वीकारोक्ति आ चुकी थी : ".... यह पुस्तक छठें दशक के वैचारिक संघर्ष का एक विवादमूलक दस्तावेज है. इस वैचारिक संघर्ष में प्रगति-विरोधी विचारों का जवाब देने में इन निबंधों ने भी एक भूमिका अदा की थी. प्रकृति से विवादमूलक होने के कारण कुछ स्थलों पर अतिसरलीकरण और अतिरिक्त आग्रह भी मिल सकता है." ऐसी स्वीकारोक्ति उसी आलोचक की हो सकती है जो सुसंगतता को आत्यंतिक रूप से जरुरी नहीं मानता और जो अपने को नए तथ्य और सत्य के आलोक में बदलने को तैयार रहता है.

आलोचना को वाद-विवाद-संवाद मानने वाले नामवर सिंह की आलोचनात्मक समझ के निर्माण में निस्संदेह मार्क्सवाद की बड़ी भूमिका है. उन्होंने न सिर्फ मार्क्सवाद को ठीक से पढ़ा था बल्कि दुनिया भर के मार्क्सवादी चिंतकों का भी अध्ययन-मनन किया था. लेकिन सब कुछ को देखने-समझने का उनका अपना नजरिया था. वे लकीर के फ़कीर नहीं थे. मार्क्सवाद की अपनी समझ का उल्लेख करते हुए अपने एक प्रकाशित व्याख्यान 'कार्ल मार्क्स और साहित्य' में वे कहते हैं : "लेनिन ने मार्क्सवाद के तीन मूल स्रोतों का उल्लेख किया है ....वे तीन मूल स्रोत हैं: जर्मन दर्शन, ब्रिटिश अर्थशास्त्र और फ्रेंच समाजवाद. मैं एक अरसे से यह अनुभव करता रहा हूँ कि एक चौथा स्रोत और है जिसका उल्लेख किया जाना चाहिए और यह चौथा स्रोत साहित्यिक है.मेरी दृष्टि में वह चौथा स्रोत ग्रीक ट्रेजेडी है." ग्रीक ट्रेजेडी का प्रसिद्ध चरित्र प्रमथ्यु मार्क्स को बहुत प्रिय था. मार्क्स को ट्रेजेडी का प्रसिद्ध लेखक शेक्सपीयर भी बहुत प्रिय था.

दूसरे विद्वानों की तरह नामवर सिंह भी मानते हैं कि मार्क्स ने साहित्य के बारे में जो कहा है वह बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन उतना ही महत्वपूर्ण है मार्क्स का वह भावबोध जो साहित्य को आत्मसात करके बना था. नामवर सिंह कहते हैं : " साहित्य से प्राप्त होने वाली यह भाव-संपदा है साहस,धैर्य, करुणा और क्रोध की मानवीय शक्तियां. जब तक मनुष्य में ये गुण न हों तब तक वह क्रांतिकारी नहीं हो सकता...केवल विचारों से ही यदि क्रान्तिकारी बनते होते, तो अनेक व्यक्ति द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की पोथियों को पढ़कर,उसके जानकार बनकर क्रांतिकारी के रूप में गली-गली मारे-मारे फिरते." मार्क्स के निर्माण में साहित्य की भूमिका का यह उल्लेख 1983 में नामवर सिंह ने किया था. लगता है कि वे हिंदी के उन उत्साही मार्क्सवादियों को, जो उन्हें संशोधनवादी कहते थे, नयी गांठ लगाते हुए मार्क्सवाद का अधिक रचनात्मक पाठ सौंप रहे थे !